RESEARCH REVIEW JOURNALS
Volume-04
Issue-03
March-2019

ISSN: 2455-3085 (Online)
RESEARCH REVIEW International Journal of Multidisciplinary
www.rrjournals.com[UGC Listed Journal]

जयसी की दृष्टि में स्त्री का स्वरूप

Niraj kumari

M.A,M.Phil in HINDI

जयसी द्वारा रचित पंदमावत में व्यक्त प्रेम–भावना को समझने से पहले हमें यह स्पष्ट कर लेना आवश्यक है कि प्रेम क्या है? प्रेम एक सहज–मानवीय वृति है जो किसी के रूपसौन्दर्य गुण या सामीप्य के कारण उत्पन्न होती है। वस्तु या पदार्थ के प्रति उत्पन्न प्रेम में वह रागात्मक संम्बंध स्थापित नहीं हो सकता जो मनुष्य और मनुष्य के बीच होता हैं। यह रागात्मक सम्बध या अनुभूति ऐसी है, जिसे शब्दो से नहीं बांधा जा सकता है और इसे शब्दो के माध्यम से बताया जा सकता है। अनेक विद्वानो ने अपने ही ढ़ग से प्रेम को परिभाषित किया है। दण्डी ने प्रेम को मानव मन का विकल्प मात्र माना है। आचार्य शेखर लिखते है कि "जिस भाव के उत्पन्न होने पर दो व्यक्तियों का मन, विचार , संशय आदि भावो से शून्य हो जाता है, जिससे आनन्द का स्त्रोत बहने लगता है। वह भाव प्रेम कहलाता है।"[1]

काम प्रवृति मनुष्य की जन्मजात प्रवृति है जिसकी अभिव्यक्ति मनुष्य बचपन में ही करने लगता है जैसे बच्चे द्वारा माँ के स्तन चूसना, अगूंठा चूसना आदि इस कामवृति को ओर इशारा करते है। प्रेम का एक अन्य नाम समर्पण भी है, क्योकि प्रेम में अपना सब कुछ न्यौछावर करने की भावना रहती है। चाहे वह वात्सल्य हो या वासनात्मक रूप में। प्रेम का एक पहलू और है जिसे विडम्बना कहते है।

प्रेम के इसी पहलू पर प्रकाश डालते हुए डा॰ रोहिणी अग्रवाल जी लिखती है–"प्रेम विडम्बना का दूसरा नाम है। समर्पण और प्रतिदान के सहारे अपने भीतर की रिक्ति को पूरा करने के लिए उठी मीठी सी टीस भरी भाव–हिलोर प्रेम का पर्याय बन जाती है[2]

प्रेम यदि रिक्ति को पूरा करने का माध्यम है तो इसे पूरा करने की कोशिश में सदैव स्त्री ही क्यों नजर आती है।

यदि प्रेम का भाव शाश्वत होता है तो अपने इष्ट के गुण देखकर उससे प्रेम करना व समर्पण करना भी प्रेम का रूप है।

उपर्युक्त परिभाषाओ से ज्ञात होता है कि अनुभूति अवर्णनीय है। अन्तत प्रेम संपर्क है, संवाद है और संवेदनात्मक शिरकत है। इसी श्रृंखला में अगर हम जायसी के प्रेम के दृष्टिकोण पर विचार करते है तो जायसी प्रेममार्गी थें। मनोविज्ञान के अनुसार प्रत्येक भावना के अन्तर्गत हमारे बौद्विक तत्वो का समावेश किसी न किसी रूप में अवश्य रहता है। आधुनिक विद्वानो ने प्रेम सम्बधी तीन दृष्टिकोण दिए है पहला आदर्शवादी विचारको का, उनके अनुसार भावना की अपेक्षा कर्तव्य ज्यादा महत्वपूर्ण है आदर्शवादी कर्तव्य के आगे प्रेम को हेय मानते है। दूसरा दृष्टिकोण यर्थाथवादियो विचारको का है जिन्होने सैद्वांतिक रूप में तो समाज के आदर्शो, नियमों एवं कर्तव्यों को स्वीकार किया लेकिन व्यावहारिक जीवन में उनकी उपेक्षा की है। वे प्रेम को कामुक्ता और मनीविनोद के अतिरिक्त कुछ नहीं मानते है। लेकिन दूसरी तरफ स्वच्छन्दतावादी विचारक सामाजिक और साहित्यिक नियमों परम्पराओ को स्वीकार नहीं करते है। वे प्रेम को जीवन का सार मानते है।

प्रेम सम्बधी उपर्युक्त वर्णन के बाद हम कह सकते है कि जायसी का प्रेम के प्रति दृष्टिकोण स्वच्छन्दतावादी था। वे जीवन में प्रेम को ऊँचा स्थान देते है। उनके काव्य का मूल आधार प्रेम ही है। ' पदमावत' में भी उनकी प्रेम सम्बधी दृष्टि का पता चलता है।

"मानुष प्रेम भयउ बैकुंठी। नाहिं त काह छारि भरि मूठी"[3]

" विक्रम धंसा प्रेम के बारा । सपना कह गय पतारा"[4]

जायसी का कहना है कि प्रेम की स्थिति मरने से ज्यादा दुखःदायी है क्योकि इसमें न तो प्राण ही रहता है और न हि मृत्यु होती है लेकिन जो खेल लेता है वह दोनों लोको में पार उतर जाता है,

'पदमावत' मे व्यक्त 'प्रेम का विश्लेषण कर लेने के बाद हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि जायसी प्रेम के स्वच्छंद रूप को स्वीकार करते है और प्रमोत्पति को सौदर्यानुभूति से अन्य मानते है। मानव मन का अन्य भावनाओ में से वे प्रेम की भावना को श्रेष्ठ मानते है। प्रेम रहित मनुष्य को वे घर पर भार के समान मानते है। जायसी ने पदमावत में स्थान–स्थान पर प्रेम पथ की महता, प्रेम की उच्चता एवं गंभीरता और प्रेम मार्गकी कठिनाईयों का वर्णन किया है।

जयसी काव्य में प्रेम का मांसल चित्रण–

[1]डा॰ गणपतिचन्द्रगुप्त, हिन्दी काव्य में श्रृगांर परम्परा और महाकवि बिहारी, पृ॰ 46
[2]अनहद–4, जनवरी–2014, लेख–चुप्पी में पगे शुभाशीष बनाम 50 साल का अतंराल और प्रेम को रौंदती आक्रामकता।
[3]वसुदेवशरण अग्रवान, पदमावत, पृ॰ 159
[4]वही, पृ॰ 223

RRIJM 2015, All Rights Reserved

जगत में बिना कारण के कुछ नहीं होता है। इसलिए प्रेम की उत्पति भी किसी न किसी कारण से ही हुई है। चाहे वह प्रत्यक्ष रूप में हो या अप्रत्यक्ष रूप में हो । प्रेम के प्रति आदर्शवादी सोच रखने वाले विद्वानो का मानना है कि प्रेम कि उत्पति बिना कारण के होती है। यह मत उचित नहीं है।भारतीय मर्मज्ञों ने प्रेमोत्पति का कारण सौन्दर्य – दर्शन माना है। चाहे रूप सौंन्दर्य हो या कर्म सौन्दर्य या फिर भाव सौन्दर्य प्रेम की उत्पति का मूल आधार सौन्दर्य ही है। सौन्दर्य का प्रत्यक्षीकरण कई तरह से होता है जैसे चित्र दर्शन, साक्षात् दर्शन आदि द्वारा । लेकिन आधार सौन्दर्यानुभूति ही है। फिर भी इनका अर्थ यह नहीं की सभी सुदंर को देखकर प्रेम उत्पन्न हो जाए।

इसी श्रृंखला में हम मध्यकाल के प्रचलित तीन रूपो का वर्णन करते है। पहला प्रेम वह था जो पूरी तरह नियमों में बंधा हुआ है। दूसरा प्रेम लोक से जुड़ा हुआ था और तीसरा प्रेम न तो प्रेम के नियमो में बधा था और न हि लोक से जुड़ा था। बल्कि वह प्रेम स्त्री–प्रेम के रूप में व्यक्त हुआ है पहली दूसरी कोटि में प्रेम मे अपनी श्रृद्वा रखने वाले पितृसत्तात्मक व्यवस्था को बनाये रखना चाहते है। इसमें कालिदास, सूफी कवि और कुछ हद तक सूर भी आते है जबकि तीसरी तरह का प्रेम मीरा का था। जो समाज की पुसंवादी विचारधारा से मुक्त होकर समानता की अवधारणा को प्रतिष्ठित करती है। पंदमावत के सदर्भ में हम देखते है तो जायसी का प्रेम पहली और दूसरी श्रेणी का आता है। वहाँ स्त्री मुक्ति के लिए कोई मार्ग नहीं है अपितु उन्होने कही न कही पितृसत्ता को पुष्ट किया है।

चाहे वह महिमामंडन नख–शिख वर्णन द्वारा हो या रति क्रियाओं के वर्णन द्वारा । रति क्रियाओं का वर्णन इस प्रकार चटकारे लेकर करना क्या प्रेम का माँसल चित्रण नहीं है?

क्या किसी व्यक्ति को चाहे वह पदमावत हो या अन्य स्त्री उन्होने सहित्य में अश्लीलता के साथ परोसना उचित है कवि ने उसका इस प्रकार मांसल चित्रण किया है। उसकी आखें, उसकी नाक, कान गर्दन ऐसे है। लेकिन वह स्वयं क्या है? उसकी क्या अस्मिता है?

या उसका एकमात्र गुण केवल और केवल सौन्दंर्य ही है।

स्त्री की अस्मिता और उसकी इच्छा का विचार कब उत्पन्न होगा? जब उसके दैहिक वर्णन को विभिन्न खण्डो में बांटकर देखा जा रहा है। एक मनुष्य के रूप में नहीं,क्योकि वह स्त्री है?

किन्तु किसी कवि ने पुरूष का ऐसा वर्णन नहीं किया जैसा वह स्त्री का करता है। इस तरह लेखक मनुष्यता को प्रतिष्ठित न करके पुरूष को संपूर्ण मनुष्य के रू॰ में मान रहा है और स्त्री को मात्र देह के रूप में औरतों को देह मानने वालो पर करारा व्यंग्य करती हुई मृदुला सिन्हा लिखती है–"औरत को मात्र देह मानना समझना और स्वयं उसे भी यही समझाना कही से भी उचित नहीं है।[5]

इसी श्रृखला में रत्नसेन सुहागरात में पदमावती से कहता है–

"जाकर जीउ वसै जेहि सेते तेहि पुनि ताकरि टेक
कनक सोहाग न बिछुरै अवटि मिलौ जो एक।"[6]

कनक–सोहाग अपने अद्वयत्व के लिए प्रसिद्व है मीरा ने भी अपने प्रेमोदगार में प्रिय कृष्ण से कहा–'तुम भए सोना' । हम भए स्वागां। जायसी पदमावती और रत्नसेन के रस भोग को कनक–सोहाग के मेल से ध्वनित करते हुए लिखते है–

"कहि सत भाउ भएउ कँठलागू। जनु केचन में मिला सोहागू
चौरासीआसन बर जोगी। खट रस चतुर सो भोगी।"[7]

अर्थात जोगी रूप में जिसे चौरासी आसनों का बल प्राप्त था, वही भोग रू॰ में छः रसो का स्वाद लेने में भी चतुर था। वह उस भौरे की भांति था जो इस प्रकार आंनदित था जैसे वह कली बेधकर उसके भीतर प्रवेश करता है। दोनो का आंलिगन क्या था मानो बरमें से मोती बींध दिया गया था।

जायसी द्वारा पदमावती और रत्नसेन के रति–क्रियाओ के नग्न दृश्य प्रस्तुत करना क्या प्रेम का मांसल चित्रण नहीं है। खेद की बात यह है यहाँ भीस्त्री को अश्लीलता के रू॰ में साहित्य में परोसा जा रहा है। स्त्री के शरीर को चाहे वह नख – शिख वर्णन द्वारा हो या अन्य किसी उपक्रम सामने आने का अर्थ है–सामाजिक वैषम्य मध्यकाल में इस कदर हावी हो गया था । तभी तो पति – पत्नी की रति – क्रियाओ के चित्रण कर कवि चटकारे लेते ही प्रतीत होते है नायिका के अंग प्रत्यंग का सूक्ष्मतम विवेचन कर कवि उसे मात्र देह में ही परिवर्तित करने में कोई कमी नहीं छोड़ता है।

जिस साहित्य को पढ़ने से मनुष्य के भीतर प्रेम, करूणा, दया, सहानुभूति के स्थान पर उसे मात्र देह में परिवर्तित करने की विचारधारा हावी हो, तो वह साहित्य लोक कल्याणाकारी नही कहा जा सकता है। जायसी रत्नसेन के माध्यम से उत्तम नारी के गुण गिनवाते है–

"चतुर नारि चित अधिक चिहूटै। जहाँ प्रेम बांधै किमि छूटै

किरिरा काम केलि मनुहारी, किरिरा जेहि नहिं सो न सुनारी"।[8]

जायसी कहते है जो जारी क्रीडा में चतुर है वह चित में अधिक चिमतती है। क्रीड़ा से पति को तोष होता है। जिसमें

[5]मृदुला सिन्हा, मात्र देह नही औरत, पृ॰ 110
[6]वसुदेवशरण अग्रवाल, पदमावत, पृ॰ 308
[7]वही, पृ॰ 314
[8]वासुदेवशरण अग्रवाल पृ॰ 315

क्रीड़ा है, वही सच्ची सुहागिन है। उनके इन विचारों से जायसी का दृष्टि कोण खुलकर हमारे सामने आया है कि जो स्त्री क्रीडा द्वारा पति को तुष्ट करती हे, वही सच्ची सुहागिन हैं पति मानो गेंद के समान उसे गोद में लेता है। जिसमें क्रीड़ा नहीं । वह उत्तम स्त्री नहीं है।

संक्षेप में मध्यकालिन स्त्री का उतरदायित्व केवल अधिक से अधिक श्रृगांर करके पति को तृप्त करना ही था। यही उनके जीवन का मुख्य ध्येय था। इसी सांमती प्रेम का चित्रण जायसी काव्य में हुआ है। इतना ही नहीं सांमती व्यवस्था के खत्म होने के बाद भी बने कानूनो का मुख्य उद्वेश्य था स्त्री–पुरूष के समान अधिकार न पाए ताकि वह सारे नागरिक अधिकारों से वंचित रहें । यदि औरत अविवाहिता है, तो पिता के संरक्षण में रहे, या फिर धार्मिक मठो मे भेज दी जाए यदि विवाहित है तो वह संपति और संतान के साथ पति के अधीन रहे। पुरूष उसके नैतिक आचरण के लिए जिम्मेवार था दूसरे शब्दो में कहे तो स्त्री के लिए स्वतंत्रता का अर्थथा– गैर जिम्मेदार होना, स्वेच्छाचारी होना। मध्ययुगीन पुरूष के मन में स्त्री के लिए नकारात्मक भाव अधिक था। दरबारी कवि प्रेम की महानता का वर्णन करते नहीं थकते थे।

मध्यवर्गीय स्त्रियों के बारे में रूसो लिखते है– "स्त्री की पूरी शिक्षा पुरूष के संदर्भ में होनी चाहिए। स्त्रियों को पुरूष की आज्ञा माननी होगी और उसका अन्याय स्वीकार करना होगा।"[9]

जायसी ने पदमावती तथा रत्नसेन की रति–क्रियाओ को आत्मा–परमात्मा का मिलन बताया है। परन्तु कवि ने इन रति–क्रियाओ को जितने चटकारे लेते हुए प्रकट किया है यह मात्र प्रेम का मांसल चित्रण है। स्त्री को मात्र एक वस्तु के रूप में परिवर्तित कर देना इन कवियों का मुख्य उदेश्य था । जहाँ आत्मा–परमात्मा का मिलन होता है वहाँ वासना नहीं होती काम–वासना का भक्ति में कोई स्थान नहीं है। काम–क्रीडा के माध्यम से एवं नख–शिख वर्णन के द्वारा प्रेम मांसल चित्रण अत्यंत सूक्ष्मता से यत्र–तत्र बिखरा नजरा आता है। मीरा के अलावा ताज, चन्द्रसखी, रत्नावली जैसी बहुत सी कवयित्रियाँ हुई जिन्होने स्त्री देह को नहीं, स्त्री मन को महत्व दिया है। कबीर, सूर, तुलसी के काव्य में मांसलता के दर्शन नहीं होते है।

पर हाँ रीतिकाल तक आते–आते यह मांसलता जरूर काव्य पर इतनी हावी हो गई कि स्त्री केवल एक वस्तु मात्र बनकर रह गई चाहे वह बिहारी काव्य में हो या विघापति के काव्य में।

रीतिकाल ऐन्द्रिक भोग की उद्दाम लालसा और विलास क्रीड़ा का युग था। कृष्णकाव्य की पवित्र आध्यात्मिक भावना से परि–पूरित श्रृंगार से ही रीतिकाल में इस कलुपित भावना का विकास हुआ वस्तुतः कवि विघापति की पदावली में अनुस्यूत् नायिका–भेद, नख–शिख वर्णन, दूती शिक्षा, अभिसार आदि को लेकर राधा–कृष्ण के नाम की आड़ में अपनी उद्दाम वासनाओ की अभिव्यजंना कर रहे है। इसका मुख्य कारण था समाज में नारी केवल क्रीडा कौतुक कि सामग्री मात्र शेष रह गई थी। अतः कवियों ने अपनी सारी प्रतिभा का प्रयोग नारी के नख–चित्रण, व हाव–भाव निरूपण में ला दिया था यदि हम ध्यानपूवर्क देखे तो शायद विद्यावति रति क्रिया है? अगर है तो वह प्रेम नहीं बल्कि वासना है। इसी तरह बिहारी के काव्य में वह प्रेम नहीं बल्कि वासना है। इसी तरह बिहारी के काव्य में भी मांसलता के दर्शन सर्वत्र होते है। इसका एक कारण यह कि आज तक पुरूष तो उसे भोग की वस्तु मानते है लेकिन नारी भी देह को वस्तु मानकर सजाती है। इस प्रकार सुदंर वस्तु बन जाता केवल जड़ता का प्रतीक है और साहित्य में उसे सुदंर वस्तु बनाकर परोसना किसी भी दृष्टि से उचित नहीं है। क्योकि साहित्यकार समाज का सृष्टा और दृष्टा दोनों ही होता है। अतः उसके साहित्य में मनुष्यत्व की प्रतिष्ठा का भाव होना चाहिए, हनन का नहीं।

इसी श्रृखंला में जायसी ने पदमावती और रतनसेन के प्रेम का विकास एक जैसा दिखाया है। जिस प्रकार पदमावती के रूप गुण को सुनकर पदमावती से रतनसेन प्रेम करने लगता है, उसी प्रकार हीरामन के मुख से रत्नसेन के गुण–रूप को सुनकर पदमावती उससे प्रेम करने लगती है।

पदमावती का प्रेम चरमोत्कर्ष पर दिखाई देता है, जब स्वयं रत्नसेन से अनुरोध करती है–

"विनति करै पदुमावति बाला। सो घनि सुख ही पीड पियाला।"[10]

इन पंक्तियों में पदमावती के प्रेम चरमोत्कर्ष दिखाया गया है कि वह स्वयं रत्नसेन से अनुरोध करती है कि वह उसका भोग करे रत्नसेन अब तक जोगी था, अब भोगी है। स्त्री की इस प्रकार स्थिति का विश्लेषण करते हुए सीमोन लिखती है–"औरत की नियति और संपूर्ण महता इस बात में निहित है कि वह पुरूष के दिल की धड़कन बढ़ा सके। वह जगंम सम्पति है जिसको पुरूष जहाँ चाहे हांककर ले जा सकता है।"[11] इसी सम्बध में हजारी प्रसाद द्विवेदी जी लिखते है–"यह नारी कोई व्यक्ति या समाज के संगठन की इकाई नहीं है, बल्कि सब प्रकार की विशेषताओ के बंधन से यथा सम्भव मुक्त विलास का एक उपकरण मात्र है नारी केवल एक ताइप है, व्यक्ति नहीं।"[12]

ठस प्रकार मांसलता का आरोपण सूफी रचना केवल पंदमावत में नहीं बल्कि मधुमालती, चांदायन, मृगावती में भी उपलब्ध है, मधुमालती में कवि कहता है।–

[9]सीमोन द बोउवार, स्त्रीः उपेक्षिता, पृ॰ 65

[10]वसुदेवशरण अग्रवाल, स्त्री मुक्तिः सघंर्ष और इतिहास, पृ॰ 46

[11]सीमोन द बीउवार स्त्रीः उपेक्षित, पृ॰ 66

[12]हजारी प्रसाद द्विवेदी हिन्दी साहित्य का उदभव व विकास पृ॰ 300

"कुवर बांह कामिनी गहि कहा। हिए सिरान जो तुब दुख रहा अबहूँ तनु पाछिली निठुराई। परिहरि लाज लागु उर लाई।"[13]

अन्ततः इन सभी सूफी प्रेमारव्यानक काव्यो में प्रेम का मांसल रूप चित्रत किया गया है।

पदमावत में व्यक्त प्रेम भावना का विश्लेषण कर लेने के बाद हम निष्कर्ष रूप में यही कह सकते है कि जायसी प्रेम भावना को सबसे अधिक महत्व देते है। प्रेम का मासल चित्रण चाहे नख–शिख वर्णन के द्वारा उनके काव्य में बिखरा हुआ है।

[13]हरिहर प्रसाद गुप्त, जायसी काव्य प्रतिभा और सरंचना पृ॰ 153

RRIJM 2015, All Rights Reserved